जलतत्त्व का दार्शनिक विमर्श

डॉ.सुदर्शन श्रीनिवास शाण्डिल्य*

इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय में जल की सत्ता दार्शनिकों ने स्पष्ट की है। इसी जलतत्त्व के प्रति अपनी आस्था के कारण गणेश, वरुण एवं अब्देवी की उपासना की भी परम्परा रही है। लेखक ने स्पष्ट किया है कि जो दिव्य जल है, उसके साकार रूप में हम गणेश तथा कलशाधिष्ठित वरुण की पूजा करते हैं। मूर्ति-पूजा का सम्बन्ध कहीं न कहीं से सूक्ष्म दार्शनिकता से तो अवश्य है!

जलतत्त्वं नमस्यामि परब्रह्मस्वरूपकम्।
जायते जीवनं यस्मात् मध्यान्ताभिधायकम्॥

पञ्चभूतात्मक जगत् के पञ्चभूताधिष्ठातृदेव पञ्च परब्रह्म के रूप में वैदिक-परम्परा में सादर पूज्य एवं प्रतिष्ठित है, जिसके नामरूप 'वाचस्पत्यम्' कोश के अनुसार-

आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रञ्च केशवम्।
पञ्चदैवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्॥[1]

इस निर्देशानुसार सभी शुभकर्मों सम्पादन के पूर्व सूर्य, गणेश, देवी, रुद्र, केशव इन समवेत स्वरूप का पञ्चदेव के अन्तर्गत पूजनविधान अद्यावधि प्रतिष्ठित है। यहाँ भी ध्यातव्य है कि पञ्चदेवों में सर्वप्रथम गणेश-पूजन ही होता है, क्योंकि सृष्टि के आदि में विद्यमान जलतत्त्व के अधिपति गणपति हैं। अतः वैदिक समस्त शुभकर्मों के पूर्व गणेश-पूजन का कारण उनका जलतत्त्वाधिपतित्व ही है।

पञ्चभूताधिपति का प्रमाण

सुस्पष्ट सर्वविदित है कि-

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरः।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥[2]

यहाँ पर द्रष्टव्य है कि जल को 'जीवन' शब्द से प्रतिष्ठित किया गया है। अर्थात् जल जीवन है, जिसे आधुनिक विचारकों ने भी सश्रद्ध आदृत किया है- "जल ही जीवन है।" यह जनोद्घोष सर्वदा सर्वथा वैदिक विचारधारा का अनुसरण है। सृष्टि के आरम्भ में जल-तत्त्व का सर्जन तथा सृष्टि-संचरण में जल का अस्तित्व वेदादि-प्रमाण में सुस्पष्ट आदृत है।

मनुस्मृति का यह प्रमाण विशेष द्रष्टव्य है-

सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत्॥8॥[3]

परब्रह्म परमात्मा ने सृष्टि की कामना से ध्यान कर सर्वप्रथम जल की सृष्टि की। उस जल में

[1] तारानाथ तर्कवागीश, वाचस्पत्यम्, पञ्चन् शब्द की व्याख्या में उद्धृत, 2006 ई., पुनर्मुद्रण, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली,

[2] कल्याण, साधनाङ्क अङ्क 54, पृष्ठ 11, कपिल तन्त्र से उद्धृत

3 मनुस्मृति 1.8

*व्याकरणाध्यापक, श्रीराम संस्कृत महाविद्यालय, सरौती, अरवल। पटना आवास- ज्योतिषभवन, शिवनगर कालोनी, मार्गसंख्या 10, बेऊर जेल के पीछे, पटना।

सर्जनशक्तिसम्पन्न बीज का वपन किया, जिससे चराचर जगत् अस्तित्व में है। यहाँ पर विशेष ध्यातव्य है कि चराचर जगत् के सृष्टिकारकशक्तितत्त्व का संवाहक जल ही है, अतः सृष्टि से पूर्व जल का अस्तित्व होना निसर्गतः अनिवार्य है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में भी इसी बात का संकेत किया गया है- **अम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥**[4] यह संवाहक अर्हता जलातिरिक्त किसी भूत पदार्थ में नहीं है। अतः पञ्चभूतों में जलतत्त्व सर्वाश्रय, सर्वारम्भक आदि सर्जक है।, जिनके अधिपति होने से गणेश का पूजन प्राथम्य दार्शनिक विवेच्य कारण परिधि में सर्वथा समुचित सुग्राह्य है। आज भी चराचर जगत् उत्पत्ति में सर्जक संवाहक जलतत्त्व नितरां सुतरां सिद्ध है। समुचित जलतत्त्व के समुचित समन्वय से सृष्टिशिरोमणि मानव का उद्भव एवं विकास अग्रसर है।

जलतत्त्व के समुचित समन्वय के निहितार्थ को समझकर सर्जन शक्ति की अग्रसरता में शुभकारक सर्वहितकारक चराचर जगत् प्रभु के संकल्प के अनुसार तदनुकूलता का संवाहक होगा, तथा ध्रुव, प्रह्लाद, रन्तिदेव हरिश्चन्द्र, विभीषण, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, रामानन्दाचार्य प्रभृति पूज्यपंक्ति प्रतिष्ठित होगी। मंगलमय प्रभु का चराचर जगत् निश्चित मंगलमय होगा। वस्तुतः इसी जलतत्त्व के संरक्षण, संवर्द्धन सदुपयोग तथा समन्वय के अभाव में चराचर जगत् की मंगलता क्षीण हो रही है।

ब्रह्मवाचक जल

गणपति तथा जल का संबन्ध- शब्दवाच्यार्थ समता की परिधि में 'जल' शब्द भी परब्रह्म का बोधक है। वेदान्तसूत्र "आकाशस्तल्लिंगात्"[5] इस न्याय से, जिसमें ब्रह्मतत्त्व के गुण जगदुत्पत्ति-स्थिति-लय लीलत्व, जगन्नियन्तृत्व, सर्वपालकत्व आदि शक्तियों की विद्यमानता हो, वही ब्रह्म है। जैसे "इमानि भूतानि आकाशादेव"[6] के अनुसार जगदुत्पत्ति-स्थितिकारणत्व से आकाश पदवाच्य ब्रह्म माना गया है। उसी प्रकार, **यस्माज्जायते यस्मिन् लीयते इति जलम्** इस व्युत्पत्तिसामर्थ्य से जगदुत्पत्ति-स्थिति-लयशीलता के कारण जलपदवाच्य ब्रह्म है। मनुस्मृति में भी स्पष्ट है- अप एव ससर्जादौ इत्यादि। इसी प्रकार गणपति-पदवाच्य भी ब्रह्म है। गण शब्दः समूहवाचकः परिगणितः तेषां गणानां पतिः गणपतिः। जल के उद्गम स्रोत की विभिन्नता से उसका समवेत नाम- गण है, तस्य पतिः गणपतिः। अथवा निर्गुण-सगुणब्रह्मगणानां पतिः गणपतिः अर्थात् त्रिविध गणों को सत्ता स्फूर्ति देनेवाला।

अप् आपः

'आप्लृ व्याप्तौ' धातु (स्वादि, आत्मनेपदी, अनिट्) से "आप्नोतेर्ह्रस्वश्च"[7] से क्विप् तथा ह्रस्व होने पर 'अप्' शब्द बनता है। **निर्मलादिभिर्गुणै आप्नुवन्ति जनान् वा आप्यायन्ते जनाः अति अप्**। इस शब्द का प्रयोग केवल केवल बहुवचन तथा स्त्रीलिंग में ही होता है, अतः 'अप्' शब्द का ही बहुवचन 'आपः' और विकल्प से 'अपः' प्रयुक्त शब्द है। अप् शब्द तत्त्वावधायक है। स्वनैसर्गिक निर्मलता, अविरलता, तरलता, सरलता तथा सात्त्विकता प्रभृति गुणों से जो विश्वजन को आप्यायित करे या जिससे विश्व आप्यायित हो- वह अप् है, जो जगत्सृष्टिकारणता के कारण ब्रह्म है। यह निमित्तोपादान कारण सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट का वाचक है। जल ब्रह्ममय शक्ति स्थूलचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म का वाचक है। अतः स्वभावतः जीवात्मस्वरूप की प्राप्ति की अग्रसरता साधन, सिद्धि, प्राप्ति अर्हता के लिए प्रत्येक पुण्यश्लोक मुमुक्षु जीवों के लिए सर्वप्रथम अनिवार्य परिधि में निर्मलतादि गुणों का संचार अनिवार्य है। अतएव सुतरां नितरां वैदिकधर्मानुष्ठान के प्रारम्भ में जलतत्त्वगुण संचारार्थ गणपति-पूजन सर्वदा स्वीरणीय तथा पालनीय है। निर्मल, सरल, तरल, सात्त्विक संचारार्थ जलस्नान से गणपति पूजनारम्भ अनुष्ठानपूर्व की पुण्यपूत परम्परा अद्यावधि प्रचलित है। अनुष्ठान करने की अर्हता में केन्द्राधिष्ठान जल तथा

4 ऋग्वेद, 10.129.1
5 वेदान्त सूत्रम्, 1.1.22
6 नृसिंहपूर्वतापिनीयोपनिषद् (3.3)
7 पाणिनीय सूत्र 3.2.58

जलाधिपति गणपति का वैश्विक अक्षुण्णता के लिए पूजन-सम्बन्ध परमावश्यक है। जलतत्त्व में सर्वभूत पदार्थों के रक्षणसामर्थ्य की अक्षुण्णता के लिए जल के शैत्य गुण का प्रयोग निरन्तर अग्रसर है।

एतावता जलतत्त्व के गुणों में मुख्य रूप से छह रूपों का संचार है- 1. शीतलता, 2. निर्मलता, 3. अविरलता, 4. तरलता, 5. सरलता, 6. सात्त्विकता। न्यायदर्शन में जल का मुख्य लक्षण है- **"शीतस्पर्शवत्य आपः"**[8] अर्थात् समवाय सम्बन्ध से जो शीतस्पर्शगुण का आश्रय हो, उसे 'अप्' या 'आपः' कहते हैं। उष्णजल की ऊष्णता तो अग्निसम्बन्ध से होती है। स्वाभाविक गुण तो शैत्य ही है। स्वाभाविक निर्मलादि सात्त्विक गुणों के संचारार्थ पुण्यपूत, तपःपूत ऋषियों का आश्रयस्थल पूर्व से ही हिमालय का क्षेत्र रहा है।

जल-स्नान की महिमा

अनुभव सिद्ध है कि स्नानमात्र से ही व्यक्ति सात्त्विक भाव से युक्त हो जाता है। पवित्रता, निरलसता, सहजता, शुभता के संचार से अनुष्ठान की अर्हता आती है। अतः सनातन परम्परा में दैनिक जीवन में स्नान प्रतिदिन प्रथम विहित आचार है, जिसका शुभाशय है- निर्मल आत्मा में निर्मलता के संचार के लिए प्रथम निर्मल स्वरूप जलब्रह्म के सम्बन्ध से हिन्दूजीवन अग्रसर होता है। जो सजातीयों के मध्य ही संगम सुगम, सुलभ तथा शुभद होता है। परमात्मा निर्मल-आत्मा की भी निर्मल निर्मल-सजातीयता के कारण ही आत्म-परमात्मा का सम्बन्ध-सम्बन्धी की नित्यता में नित्य निर्मल संगम सुलभ, सुगम, शुभद तथा शाश्वत हितकर है। संसार तो मलाशय है, अतः विजातीय संसार के साथ निर्मलात्मा का सम्बन्ध सुगम, शुभद, हितकर हो ही नहीं सकता।

अतः निर्मल जलतत्त्व का सम्बन्ध प्रत्यक्ष प्रत्येक जीव से स्वभावतः शुभद है। परन्तु अत्यन्त दुःख का विषय है कि आज की युवा पीढ़ी इस सर्वथा शुभद वैदिक स्नानविधि का महत्त्व न दे रही है। कई-कई दिनों पर स्नान करते हैं। बाहरी सज्जा से सज्जित होकर कृत्रिम सौरभ का आश्रय ले अपूत जीवन को पूत मानते हैं, जिसका कुफल, कुकृत्य-नृत्य अग्रसर है। इससे विश्व विविध पापातपों से बहुविध पीडित है। एतावता जलतत्त्व का संरक्षण तथा सम्बन्ध विश्वकल्याणार्थ अनिवार्य है।

विशेष ध्यातव्य है कि मात्र मानव योनि प्राप्त होने से प्रत्येक मानव जन्मजात साधक है। सत्संग साधक का स्वधर्म है। सत्संग के स्वधर्मनिष्ठ होने से साधक धर्मात्मा, जीवन्मुक्त तथा सिद्ध महापुरुष भक्त हो सकता है। सत्य स्वीकृति ही सत्संग है जो निसर्गतः स्वशक्तिसंसाध्य है। बाह्य कारण निरपेक्ष है। सत्संग मानव का स्वधर्म है। एतदर्थ पराक्रम-परिश्रम अपेक्षित नहीं है। जहाँ पराक्रम परिश्रम है, वह सत्संग नहीं है। पृथ्वी पर तीन भाग जल है। मानव शरीर में भी तीन भाग जल है। इस जलज तत्त्व के अनुसार शाश्वतता के अभिमुख्यार्थ प्रतिदिन जलाधिपति गणपति-पूजन अनिवार्य है। इसी शाश्वत सत् गणपति (जलतत्त्व) का संग ही सत्संग है, जिसमें निर्मलतादि छह गुणों का बाह्य कारणनिरपेक्ष स्वाभाविक संचार हो। यही किसी सिद्ध सन्त महापुरुष की परिभाषा भी है, जिनके सामीप्य मात्र से उक्त गुणों का संचार हो सकता है जो सत् है।

विवेक प्रकाशक के रूप में

बोधगम्य है कि शरीर और संसार आत्मतत्त्व की भिन्नता है, जो जातीय भिन्नता है। जो जातीय भिन्नता हो जिससे जातीय भिन्नता हो उससे नित्य योग तथा आत्मीय सम्बन्ध नहीं हो सकता है। इस दृष्टि से जो अनुत्पन्न, अविनाशी, स्वाधीन, रसरूप, चिन्मय अनादि अनन्त तत्त्व है इसी से आत्मस्वरूप का निर्मलादि गुणों के कारण सजातीय एकता है, जिससे एकता होती है, वहीं अपना होता है। इस प्रकार विभिन्न नामरूपों में शब्दाभिवाच्य ब्रह्म ही जीवात्मा का अपना होता है। इन्ही दोनों का सम्बन्ध शाश्वत शुभद है। इसी शक्ति के संचार के लिए प्रतिदिन जलतत्त्वसम्बन्ध अनिवार्य है। सम्पूर्ण पदार्थों- रस, रसायनों

[8] अन्नम्भट्ट, तर्कसंग्रह, पदार्थ-विवेचन

का भी मूल कारण जलतत्त्व ही है। जहाँ भी जिस रूप में जो रस है वह जलतत्त्व है। सजलता, सरसता एवं तरलता के कारण ही प्रेम रस, दया रस, करुणा रस नेत्राश्रुओं के कारण भाव व्यवहार के द्वारा प्रकट होते हैं।

अभाव में विकल्प के रूप में जल

विशेष ध्यातव्य है कि "**सर्वमप्सु प्रतिष्ठितम्**" सर्वपदार्थाधिगम तत्त्व अप् में प्रतिष्ठित है। अतः इष्टदेव के समक्ष जलमात्र के समर्पण से सर्वपदार्थसमर्पण का फल मिल जाता है। अतः पूजाविधि में किसी विहित पदार्थ के अभाव में मात्र जल समर्पण से उस पदार्थ की पूर्ति हो जाती है- "**अभावे तु जलं दद्यात्।**" इस प्रकार भी सर्वतत्त्वाधायक जल पदार्थ है।

जलतत्त्व का वैदिक पद्धति में व्यावहारिक स्वरूप-विवरण

"जीवनस्य गणाधिपः" के अनुसार प्रतिदिन मानव जीवन के अभ्युदयार्थ जलतत्त्व के निर्मलादि सात्त्विक गुणों के संचारार्थ गणपति का पूजन, वन्दन, नमन, ध्यान अनिवार्य है। जीवन में प्रतिक्षण गुणगान संचरण का स्थैर्य तथा नैरन्तर्य आत्मस्वरूप का प्रतिष्ठापक होगा। यही है- स्वसापेक्ष नित्य स्वाश्रयी सहज सत्संग। यह सर्वथा अन्तरंगस्थ है। उस अन्तरंग सच्छक्ति के जागरणार्थ ब्रह्मबोधक किसी भी नामरूप का जप एवं ध्यान प्रातः से अग्रसर होना चाहिए। जलतत्त्व सर्वभूतहितकर शक्ति का संवाहक है। अतः जलस्नान से जीवन अग्रसर कर मानव जीवनोद्देश्य को सफल करना चाहिए। ब्राह्म मुहूर्त वह स्नान द्विविध रूपों अग्रसर मानसिक शुचिता भी स्नान है, क्योंकि वहाँ भी जलतत्त्व निर्मलादि सात्त्विक संचार ही होता है। जलतत्त्व व्यापकता का व्यावहारिक दर्शन गणपति-पूजन में दूब का सर्वाधिक महत्त्व है। तीन दलों वाला 5 या 11 दूर्वादल का समर्पण सर्वाधिक प्रसन्नताकारक होता है। दूब कभी सूखता नही है, क्योंकि वनस्पति पदार्थों में दूब पर्याप्त जलतत्त्वावधायक है। इसलिए जलपति गणपति के साथ जलतत्त्वावगाहक दूब का भी सम्बन्ध जलतत्त्व का ही प्रतिष्ठापन है।

देवी के रूप में जल- अब्देवी

वैदिक यज्ञविधि या गृहप्रवेशादि शुभकार्यों में यज्ञविहित देवपूजन का विधान है। जिसमें ग्रहवेदी पर विहित स्थान पर देवपूजन होता है। इसमें सोमप्रत्यधिदेवता के रूप में अप् देवी की पूजा होती है। यह अप् देवी भक्तों के कल्याणार्थ अनेक रूपों को धारण करती है। यहाँ देवी ही वर्षा का मूल कारण है। इसी जल को सूर्यदेव अपनी रश्मियों से आकृष्ट कर अन्तरिक्ष में पहुँचाते हैं और इन्द्रदेवता इसे वज्र से विदीर्ण कर वर्षा के रूप में देते हैं। इसलिए अप् देवी का पूजन विहित है। इसमें प्रार्थना है- आप इसी प्रकार सदा कल्याण प्रदान करती रहे- "यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।"[9]

इसी देवी-शक्ति के संचार से वरुण, सोम अन्नसृष्टिकारक होते हैं। यही देवी सृष्टि के आदि कारणस्वरूपा है। इन्हीं पर प्रलयावस्था में ब्रह्माण्ड का अधिकार होता है। जिसमें विश्व का समष्टि स्वरूप विद्यमान रहता है। परब्रह्म का संकल्प- "**एकोहं बहु स्याम**" होते सृष्टि प्रारम्भ हो जाती है। प्रथमोत्पन्न हिरण्यगर्भ में जनयित्री शक्ति से सम्पन्न इस अब्देवी का दर्शन किया था- जिनका इस रूप में ध्यान वर्णित है-

आपः स्त्रीरूपधारिण्यः श्वेता मकरवाहनाः। दधानाः पाशकलसौ मुक्ताभरणभूषिताः॥[10]

श्राद्ध विधि में भी पिण्डदान के आगे अब्देवी का प्रर्थना की जाती है। "शिवा आपः सन्तु।" अब्देवी कृपा प्रसन्नता से अग्रिम वंशजों की जल में डूबने से मृत्यु नहीं होती है। इस प्रकार, जलतत्त्व का विविध रूपों में सम्बन्ध है।

[9] ऋग्वेद 7.43.5

[10] नीलकण्ठ भट्ट, प्रतिष्ठामयूख, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, 1925 ई., वाराणसी, शान्तिमयूख, पृष्ठ 37. एवं वाचस्पत्यम्, पूर्वोक्त. ग्रहयज्ञ शब्द की व्याख्या में उद्धृत। भाग 3

जलाधिपति वरुण कलशस्थापन के परिप्रेक्ष्य में

जलतत्त्व को सभी शुभकार्यों के पूर्व कलशस्थापन विधि में कलश में अपाम्पति वरुण के रूप में पूजन विहित है। जलतत्त्व संचरण की अग्रसरता में समुद्रमन्थन से 14 रत्नों में जलरत्नधारक कलश परिगणित है, जिसके विना कोई वैदिक कर्म नहीं किया जाता है। यह अनुष्ठान की अर्हता जलतत्त्व सम्बन्ध के विना सम्भव नहीं है। इसका प्रारम्भ शुचीकरण से होता है। सर्वतीर्थाभिमन्त्रित जल को हाथ में लेकर-

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपिवा। यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

यहाँ भी पुण्डरीकाक्ष से जलतत्त्व ही संचरित है। जलतत्त्व का आधार कलशमात्र में सर्वदेवशक्ति का संचरण है। अतः प्रथम कलशस्थापन होता है। इसके भी अधिष्ठातृदेव वरुण हैं। कलश मानव जीवन के लिए सर्वश्रेष्ठ शुभसंदेश का प्रेरक है। अपने आकार के कारण यह मस्तिष्क का स्वरूप संवाहक है।

यहाँ जलतत्त्व के पुरुषवाचक 'वरुण' शब्द से वाच्य उसी आदिकारण अप् का पूजन है। 'वृञ् वरणे' (स्वादि, उभयपदी, सेट्) धातु से "कृवृदारिभ्य उनन्"[11] सूत्र से 'उनन्' प्रत्यय द्वारा 'वरुण' शब्द की सिद्धि होती है। "व्रियते वृणोति वा इति वरुणः" अर्थात् जिस जलतत्त्वशक्ति का कार्यसापेक्षता की सीमा में वरण अर्थात् स्वीकार किया जाता है, वह वरुण देवता है। समस्त वैदिक शुभकर्मों के सम्पादनानुकूल अर्हता संचार के लिए जलतत्त्व शक्ति पूजन विहित है। वरुण देवता द्वादश आदित्यों में भी परिगणित हैं। वेद ने इन्हें प्रकृति के नियमों का व्यवस्थापक माना है। वेद में ऐसा वर्णन है कि वरुणदेव के विधान के कारण ही द्युलोक और पृथ्वीलोक पृथक्-पृथक् प्रतिष्ठित हैं। वे ही आदित्य रूप से दिन में प्रकाश देते हैं तथा रात्रि में चन्द्र और तारों को प्रकाशित करते हैं, इस प्रकार जगत् के प्राणी को अंधकार से बचाते हैं।[12] इसी आशय की पुष्टि "अपामधिपतिः" इस अथर्ववेद में उक्त वरुण की उपाधि से भी होती है।[13] इनके दो वाहन हैं- मकर और रथ।[14] इनके आयुध पाश हैं, जिसे 'नागपाश विश्वजित्' भी कहते हैं। अतः वरुण का एक नाम 'पाशी' भी है। गाण्डीव और तूणीर भी इनके आयुध हैं।

परवर्ती साहित्य में वरुण के पिता कश्यप तथा माता अदिति माने गये हैं। इनकी दो पत्नियाँ- 'देवी' एवं 'पर्णाशा' है। दोनों को 'वरुणानी' कहा गया है। पाणिनि के काल में वरुणानी की प्रसिद्धि के कारण स्त्रीलिंग-विधायक सूत्र— "इन्द्रवरुणभवशर्व" (4.1.49) इत्यादि से वरुण की शक्ति वरुणानी की सिद्धि होती है। ज्येष्ठा पत्नी से स्थल नामक एक पुत्र तथा वारुणी नामक पुत्री का उल्लेख हुआ है। राजा जनक की सभा के शास्त्रार्थी विद्वान् बन्द वरुणदेव के ही पुत्र थे, जिसने महाभारत में स्वयं स्वीकार किया है।[15] दूसरी पत्नी पर्णाशा शीततोया महानदी पर्णाशा की अधिष्ठातृ देवी हैं। इनका पुत्र शतायुध नाम से विख्यात है।[16] तीसरी पत्नी का नाम चर्षणी है, जिनके पुत्र भृगु हुए हैं।[17] बाल्यावस्था से ही भृगु आत्मज्ञान की प्रभा से दीप्त थे। वरुण ने भी इन्हें आत्मज्ञान का उपदेश किया था[18] इस प्रकार कार्यसापेक्ष जलतत्त्वावधारक वरुणदेव वैदिक उपास्य देवों में हैं।

इस प्रकार जलतत्त्व का संरक्षण विश्वहितार्थ परम अनिवार्य है। इसकी निर्मलता, अविरलता, तरलता, सरलता, सात्त्विकता तथा अक्षुण्णता में विश्व अस्तित्व में रहेगा।

जलाधिपाय देवाय सर्वगुणाय सृष्टये। आदिबीजाय भद्राय निरन्तरं नमो नमः॥

निर्मलता का नैरन्तर्य तथा स्थैर्य ही शुभ जीवन है।

***

11 पाणिनीय सूत्र 3.5.53

12 ऋक् 7.65.1-5- प्रति वां सूर उदिते सूक्तैर्मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम्। ययोरसुर्यमक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगत्नु ॥1॥

13 अथर्ववेद, 5.14.4 ॐ वरुणो अपामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेस्यामा शिष्यस्यां पुराधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्या

14 अग्निपुराण 56.23.24 15 महाभारत वन पर्व, 134-31 16 महाभारत, द्रोणपर्व, 92.44

17. भागवत, 6.4 18 . तैत्तिरीय उपनिषद्, तृतीय भृगुवल्ली, प्रथम अनुवाक् - भृगुर्वै वारुणिः। वरुणं पितरमुपससार।